इकाई 4 रंगमंच (नाट्यमण्डप) निर्माण विधि (भाग दो)

इकाई की रूपरेखा

4.1 उद्देश्य

4.2 प्रस्तावना

4.3 मत्तवारणी का निर्माण

- 4.3.1 रंगपीठ और रंगशीर्ष
- 4.3.2 षड्दारुक का निर्माण
- 4.3.3 द्वार निर्माण
- 4.3.4 कुतप
- 4.3.5 नाट्यमण्डपों पर छत
- 4.3.6 'शेलगुहाकार' नाट्यमण्डप
- 4.3.7 रंगमण्डप की विभाजनपद्धति
- 4.3.8 नाट्यमण्डप के तीन भाग

4.4 सारांश

4.5 शब्दावली

4.6 सन्दर्भ ग्रन्थ

4.7 बोध प्रश्न

4.1 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन कर लेने के बाद आपको :

- रंगमंच के आन्तरिक विषयों का प्रकाशन हो सकेगा।
- इसके आधार पर रंगमंच के निर्माण विधि का ज्ञान हो सकेगा।
- रंगमंच के अपेक्षित सावधानियों की ओर ध्यान आकर्षित हो सकेगा।
- विषयगत विषयों से अवगत हो सकेंगे।
- रंगमंच के विविध पक्षों का उद्घाटन हो सकेगा।

4.2 प्रस्तावना

इस इकाई के अन्तर्गत रंगमंच (नाट्यशास्त्र) के विविध पक्षों के साथ जो इसके अन्तरंग धर्म हैं उन्हें प्रकाशित किया गया है। क्योंकि जैसे भवन में भी अनेक प्रकार के कार्य व्यावहार की दृष्टि से उसके आन्तरिक स्वरूप को नियोजित किया जाता है उसी प्रकार रंगमंच के भी आन्तरिक स्वरूप को नियोजित किया जाता है। यथा मत्तवारणी, रंगपीठ, रंगशीर्ष, षड्दारुक, द्वार निर्माण आदि की व्यवस्था इस इकाई में प्रतिपादित की गयी है।

4.3 मत्तवारणी का निर्माण

मत्तवारणी नाट्यमण्डप का महत्त्वपूर्ण भाग है जिसका अर्थ वरामदा होता है। कोष ग्रन्थों में मत्तवारणा शब्द मिलता है जिसका अर्थ शब्दकल्पद्रुम में बरामदा या वरण्डा दिया गया है। मत्तवारणी रंगमण्डप के बाहर दोनों ओर के दो बरामदे होते हैं जिसके चार स्तम्भ होते हैं और ऊँचाई डेढ़ हाथ होती है। नाट्यमण्डप निर्माण में मत्तवारणी की अहम भूमिका मानी जाती है। रंगपीठ के दोनों ओर आठ गुणा आठ हाथ के डेढ़ हाथ ऊँचाई पर बने चबूतरों को मत्तवारणी कहा जाता है। जिसके सम्बन्ध में नाट्यशास्त्र में कहा गया है–

रंगपीठस्य पार्श्वे तु कर्त्तव्या मत्तवारिणी।
चतुःस्तम्भसमायुक्ता रंगपीठप्रमाणतः।।
अर्ध्यर्धस्तोत्सेधेन कर्त्तव्या मत्तवारिणी।
ऊत्सेधेन तयोस्तुल्यं कर्त्तव्यं रंगमण्डपम्।। (ना.शा. 2/70–71)

अर्थात् रंगपीठ की दोनों बाजू में दोनों ओर रंगपीठ के माप के बराबर चार खम्बों से युक्त मत्तवारणि की रचना की जानी चाहिए। इस मत्तवारणि की ऊँचाई डेढ़ हाथ हो तथा इन दोनों मत्तवारणियों के बराबर ही रंगपीठ की ऊँचाई हो। विप्रदास के मतानुसार चार स्तंभों पर उपरिभूमिका (छत) बनायी जाती है जो नाट्यगृह की छत से भिन्न तथा उससे नीचे रहती है। इस उपरिभूमिका पर एक कलश निर्मित किया जाता है। अभिनवगुप्त मत में मत्तवारणी के दो अर्थ होते हैं। देव मन्दिरों में प्रदक्षिणा भूमि की तरह नाट्यमण्डप के चारों ओर फैली हुई आठ हाथ की यह भूमि ही मत्तवारणी होती है। अथवा रंगपीठ के दोनों पार्श्वों में 8×8 हाथ वर्गाकार व्यास में फैली समचतुरस्र भूमि मत्तवारणी होती है। द्वितीय मत अभिनवगुप्त का प्रतीत होता है क्योंकि रंगपीठ ही समस्त नाट्यमण्डप का केन्द्र होता है। उसका मत्तवारणी से नीचा होने का कोई अर्थ नहीं है। अतः यह रंगपीठ के प्रमाण के अनुरूप तथा उसके दोनों पाश्वों में होती है। लेकिन मत्तवारणी से सम्बन्धित श्लोक में एक वचनान्त पार्श्वे पद के प्रयोग के कारण रंगपीठ के सम्मुख मत्तवारणी का विधान किया है और वह रंगपीठ के दोनों ओर वरण्डा नहीं अपितु मत्तगजों की श्रेणी रंगपीठ के रूप में वर्तमान रहती है। मत्तवारणी चार स्तम्भों में बंधी रहती है। इसके सम्बन्ध में गोवर्धन पांचाल का मन्तव्य है कि वास्तुशास्त्रीय दृष्टि से रंगमंच के ऊपर की छत को सहारा देने के लिए मत्तवारणी के स्तम्भों का उपयोग किया जाता है। परन्तु उनके साथ कुछ अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य करते हुए भी देखा जाता है। यथा– पात्रों का उनके पीछे छुपना, अभिज्ञानशाकुन्तल में जो दुष्यन्त द्वारा हिरण का पीछा करने के क्रम में वृक्षों की झाड़ियों को ओट के रूप प्रयुक्त किया गया है। कोई पात्र जैसे शकार के द्वारा पीछा की जाती हुई वसन्तसेना का मत्तवारणी के किसी स्तंभ पर थककर सिर टिकाना आदि। अभिनवगुप्त के अनुसार मत्तवारणी रंगपीठ के दोनों बगल 8×8 हाथ का वर्गाकार में फैली हुई समचतुरस्र होनी चाहिए। कुछ आचार्य रंगपीठ और रंगशीर्ष दोनों के बराबर आयताकार में भी 16×8 हाथ की मत्तवारणी मानते हैं। मत्तवारणी की ऊँचाई रंगपीठ के बराबर होनी चाहिए। प्रो. सुब्बाराव ने नाट्यमण्डप पर लिखे गये निबन्ध में मत्तवारणी के सम्बन्ध में एक नवीन कल्पना की है। उन्होंने पार्श्वे, कर्त्तव्या, मत्तवारणी शब्दों में प्रयुक्त एक वचन के आधार पर रंगपीठ के सामने एक मत्तवारणी का विधान बताया है। उन्होंने मत्तवारणी शब्द का अर्थ 'मत्तानां वारणानां श्रेणिः'। अर्थात् मत्तगजों की श्रेणी किया है जो रंगपीठ के सामने डेढ़ हाथ ऊँची दीवाल पर चित्रित मत्त

हाथियों की पंक्ति चार स्तम्भों में बधी होती है। उन्होंने अपने मत के समर्थन में चतुः स्तम्भसमायुक्ता के स्थान पर चतुस्तम्भसमायुक्ता पाठ माना है। स्तम्भ शब्द का अर्थ हाथियों के बांधने का स्थान (आलान) है रंगपीठ के सामने अंकित चार स्तम्भों से युक्त मत्त वारणों की श्रेणी इन्द्र के ऐरावत गज के प्रतीक रूप में है। उनकी यह कल्पना अलंकरण एवं स्थापत्यकला की दृष्टि से यह भले ही सुन्दर और उपयोगी हो लेकिन यह मत आचार्य भरत के विपरीत होने से ग्राह्य नहीं है। डॉ. मनमोहन घोष तथा प्रो. मनकद ने मुख्य मण्डप के अन्तर्गत ही मत्तवारणी की कल्पना की है, जो इस प्रकार है–

आयताकार मत्तवारणी

16×32 हाथ

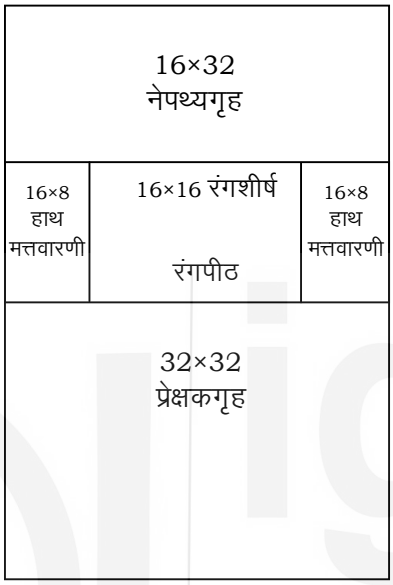

समचतुरस्र मत्तवारणी

8×32 हाथ

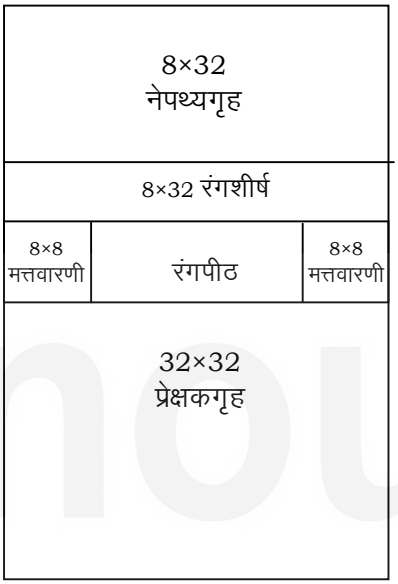

किन्तु यह मत भरत या अभिनवगुप्त के सिद्धान्त से विपरीत है। प्रो. भानु ने मत्तवारणी शब्द का अर्थ मत्तों का वारण करने वाली क्रिया है। उनका कथन है कि उन्मत्त सामाजिकों से अभिनय–प्रदर्शन की रक्षा के लिए रंगपीठ के सामने एक दीवाल होती थी जिसे उन्मत्तों के वारण करने के कारण मत्तवारणी कहा जाता है। लेकिन यह मत अभिनवगुप्त की दृष्टि में उपमुक्त प्रतीत नहीं होता है।

आयताकार मत्तवारणी

16×32 हाथ

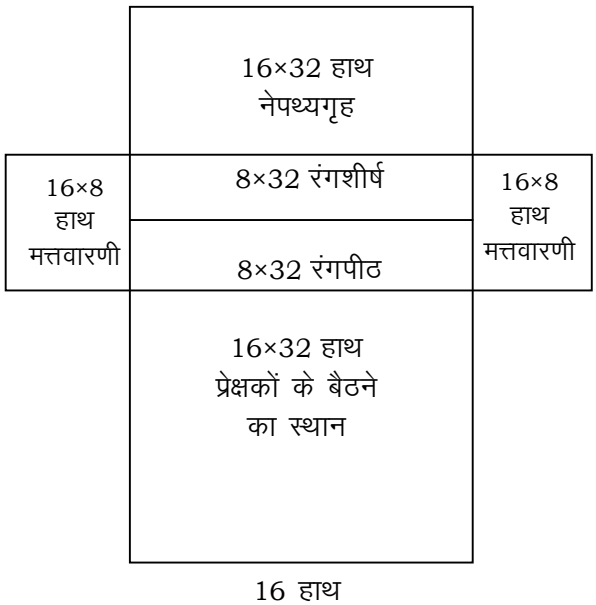

16 हाथ

अभिनवगुप्त के अनुसार रंगपीठ के दोनों ओर नाट्यमण्डप के बाहर चार स्तम्भों के युक्त आठ हाथ लम्बी तथा आठ हाथ चौड़ी (8×8 हाथ) वर्गाकार समचतुरस्र मत्तवारणी होती है। अन्य व्याख्या के अनुसार मत्तवारणी रंगशीर्ष और रंगपीठ दोनों के बगल में आयताकार 16×8 हाथ की मत्तवारणी होती है। इस प्रकार अभिनवगुप्त की दृष्टि में दो प्रकार की ही मत्तवारणी होती है– आयताकार और समचतुरस्र। अभिनवगुप्त के अनुसार मत्तवारणी का स्वरूप निम्न प्रकार है–

नाट्यशास्त्र में बतलाया गया है कि मत्तवारणी पर माला, धूप, वस्त्र आदि नाना प्रकार के पदार्थ अर्पित करना चाहिए और भूतों की प्रिय बलि देनी चाहिए। उस मत्तवारणी के स्तम्भों के नीचे कुछ व्यक्तियों द्वारा लोहा डालना चाहिए और ब्राह्मणों को भोजन में खिचड़ी देनी चाहिए। इस प्रकार विधि के अनुसार पुरस्कारों अर्थात् दान आदि के साथ मत्तवारणी की रचना करनी चाहिए और उसके बाद शास्त्रोक्त प्रक्रिया के अनुसार रंगपीठ का निर्माण करना चाहिए (ना.शा. 2/72–74)।

4.3.1 रंगपीठ और रंगशीर्ष

मत्तवारणी का निर्माण रंगमण्डप अर्थात् सामाजिक के बैठने के स्थान से डेढ़ हाथ की ऊँचाई पर होना चाहिए और रंगपीठ के दोनों ओर बनाई गयी मत्तवारणी की समान ऊँचाई का ही रंगपीठ होना चाहिए। कुछ विद्वान् रंगपीठ को प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से नीचा दिखलाया है। परन्तु विचार करने पर यही सिद्ध होता है कि रंगपीठ प्रेक्षकों के बैठने के स्थान से डेढ़ हाथ ऊँचा ही होता है। यह सम्भव है कि रंगपीठ से रंगशीर्ष और नेपथ्य ऊँचे होते हैं क्योंकि नाटकों में जो रंगावतरण शब्द मिलता है उससे यह ध्वनित होता है कि पात्रों का नेपथ्य और रंगशीर्ष से रंगपीठ का अवतरण होता है। इससे स्पष्ट होता है कि रंगपीठ रंगमण्डप में प्रेक्षकों के बैठने का स्थान से ऊँचा और नेपथ्य तथा रंगशीर्ष से नीचा होता है। रंगपीठ के प्रसंग में सर्वप्रथम रंगशीर्ष के विषय में आचार्य भरत कहते हैं–

रंगशीर्षन्तु कर्त्तव्यं षड्दारुकसमन्वितम्
कार्यं द्वारद्वयं चात्र नेपथ्यगृहकस्य तु।।
पूरणे मृत्तिका चात्र कृष्णा देया प्रयत्नतः।। (ना.शा. 2/75–76)

अर्थात् छः लकड़ी के खम्बों से युक्त रंगशीर्ष बनाना चाहिए और उसमें नेपथ्यगृह के दो द्वार बनाने चाहिए तथा उसे भरने के लिए काली मिट्टी डालनी चाहिए। तात्पर्य यह है कि छः सुन्दर काष्ठ खण्डों से युक्त रंगशीर्ष की रचना करनी चाहिए और नेपथ्यगृह में प्रवेश के लिए दो द्वार बनाना चाहिए। अभिनवगुप्त के अनुसार नेपथ्यगृह की भित्ति के सामने एक दूसरे से आठ के अन्तर पर दो–दो खम्बे तथा उनके ऊपर–नीचे की दो लकड़ियों के दो खंभों, उनके ऊपर नीचे की दो लकड़ियों और उनके बीच के दो खंभों से सुशोभित त्रिद्वारक को षड्दारुक कहते हैं। रंगशीर्ष को कछुए की पीठ के समान अथवा मछली की पीठ के समान नहीं बनाना चाहिए बल्कि दर्पण के तल के समान समतल होना चाहिए। जिसके सम्बन्ध में आचार्य भरत ने कहा है कि कुशल कारीगरी के द्वारा निर्माण के रंगशीर्ष में रत्न रखना चाहिए। पूर्व में वज्र दक्षिण पार्श्व में वैदूर्य, पश्चिम की ओर स्फटिक, उत्तर दिशा में प्रवाल (मूंग) और बीच में सोना रखना चाहिए। इस प्रकार रंगशीर्ष का निर्माण करके लकड़ी का काम प्रारम्भ करना चाहिए। ऊह–प्रत्यूह से युक्त, नाना प्रकार के शिल्पों से समन्वित, अनेक प्रकार के संजवन अर्थात् भित्तिसदृश प्रतीयमान चतुःशाल, काष्ठ फलक से अलंकृत अनेकविध

सर्प, गज आदि के चित्रों से सुसज्जित चारों ओर से साल–भंजिकाओं अर्थात् पुत्तालियों से अलंकृत निर्व्यूह अर्थात् उभरे हुए चित्रों एवं कुहर यानि भीतर खुदे हुए चित्रों से युक्त, नाना प्रकार की वेदिकाओं से समन्वित अनेक प्रकार की शैलियों के विन्यास से संयुक्त यन्त्र सदृश जालियों वाले खिड़कियों से सुशोभित सुन्दर पीठ एवं धारणियों से युक्त कपोत वाली स्थान से युक्त अनेक प्रकार के तल पर खड़े किये गये स्तम्भों से सुशोभित काष्ठ कर्म करना चाहिए। इस तरह रंगशीर्ष के निर्माण में दारुकर्म (काष्ठकर्म) बतलाये गये हैं।

4.3.2 षड्दारुक का निर्माण

नेपथ्यगृह की भित्ति से लगे हुए एक दूसरे से आठ हाथ के अन्तर पर दो स्तम्भों को खड़ा करके उसको जो मुख है उसकी अपेक्षा से चार हाथ के अनन्तर पर दो और खम्बों को खड़ा करें। उसके नीचे और ऊपर दो काष्ठ ये छः काष्ठ हैं। जहाँ पर छः काष्ठ हो उसे षड्दारुक कहते हैं। रंगशीर्ष में विशेष छः काष्ठ खण्ड लगाने की विधि को षड्दारुक कहा जाता है। यहाँ पर षड्दारुक शब्द से संज्ञा अर्थ में कन् प्रत्यक्ष हुआ है। इससे विचित्र रचनायुक्त सूचित होता है। आचार्य अभिनवगुप्त के अनुसार नेपथ्यगृह की भित्ति के सामने एक दूसरे से आठ हाथ के अन्तर पर दो–दो खम्बे तथा उसके ऊपर–नीचे की दो लकड़ियों सब मिलकर छह काष्ठ खण्ड होते हैं। दूसरे व्याख्याकार के अनुसार दोनों किनारों के दो खंभों उनके ऊपर–नीचे का दो लकड़ियों और उनके बीच के दो खंभों से सुशोभित विद्वारक को षड्दारुक कहते हैं। तीसरे व्याख्याकार के अनुसार– **1. ऊह–** स्तम्भ के ऊपर के सिरे से निकला हुआ काष्ठ, **2. प्रत्यूह–** उससे आगे निकली हुई तुला, **3. निर्यूह–** तुला के किनारों से निकले हुए तखतो की दीवार, **4. संजवन–** भित्ति के समान आकाश में निकले हुए तखते, **5. अनुबन्ध–** खंभों पर बने हुए सिंह आदि, सांप या हाथी आदि, **6. कुहर** – तख्तों के ऊपर खुदे हुए पर्वत, नगरों के कुजें तथा गह्वर आदि रूप ये षड्दारुक है। प्रो. सुब्बाराव ने षड्दारुक की कुछ भिन्न प्रकार की व्याख्या की है और उसका चित्त भी निर्मित भी किया है।

षड्दारुक नेपथ्यगृह की दीवाल से लगे हुए एक दूसरे से आठ हाथ की दूरी पर दो खम्भे खड़े करने चाहिए। उसके पास चार–चार हाथ की दूरी पर दो और खम्भे खड़ करने चाहिए। इन चारों खम्भों के ऊपर और नीचे दो और काष्ठ लगाने चाहिए। ये छः काष्ठ 'षट्दारुक' कहलाते है। तात्पर्य यह है कि पहिले दो खम्भे एक दूसरे से आठ हाथ की दूरी पर खड़े किये जाँय। तदनन्तर उसके मुख की अपेक्षा से दोनों ओर चार–चार हाथ की दूरी पर दो खम्भे और खड़े किये जाँय। इन खम्भों के ऊपर और नीचे की ओर सरदल और चौखट के रूप में दो काष्ठ लगाये जाँच। इस प्रकार ये चार खम्भे तथा ऊपर और नीचे के दो काष्ठ मिलकर 'षट्दारुक' कहलाते हैं। इस प्रकार प्रथम व्याख्या के अनुसार 'षट्दारुक' का स्वरूप निम्न प्रकार है–

षड्दारुक की प्रथम-स्थिति

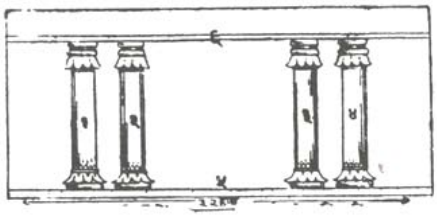

क्रमशः द्वितीय व्याख्या के अनुसार दोनों पार्श्वों भित्तियों के सहारे दो खम्भे खड़े किये जाँय और उन दोनों पार्श्वों के बीच में दो खम्भे और खड़े किये जाँय तथा दोनों पार्श्वों के ऊपर और नीचे दो काष्ठ लगाये जाँय। इन छः काष्ठों को 'षट्दारुक' कहते हैं। इस प्रकार दूसरी व्याख्या के अनुसार षट्दारुक की स्थिति निम्न प्रकार है–

षट्दारुककी द्वितीय-स्थिति

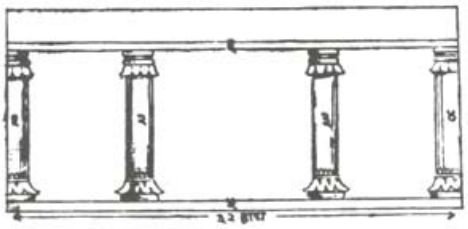

क्रमशः तृतीय व्याख्या के अनुसार ऊह, प्रत्यूह, निर्यूह, व्यूह (संजवन), संव्यूह (अनुबन्ध) और कुहर नामक छः काष्ठों को 'षट्दारुक' कहते हैं। खम्भे के ऊपरी भाग से निकला हुआ काष्ठ 'ऊह' कहलाता है। उस काष्ठ से भी बाहर निकली हुई तुला को 'प्रत्यूह' कहते हैं। तुला के बाहर दो खम्भों के मध्य लगे हुए भित्ति सदृश फलक को 'निर्यूह' कहते हैं। ऊपर की ओर उठे हुए भित्ति के समान चतुःशाल फलक को 'संजवन' या 'व्यूह' कहते हैं। खम्भों के ऊपर बने हुए सिंह, गज, सर्प आदि के उभरे हुए चित्र 'अनुबन्ध' या 'संव्यूह' कहलाते हैं। खम्भों के ऊपर–भीतर की ओर खोदकर बनाये गये पर्वत, नगर, कुंज, गुहा रूप अंकन 'कुहर' कहे जाते हैं। इन छः प्रकार के दारुकर्म को 'षट्दारुक' कहते हैं। तीसरी व्याख्या के अनुसार 'षट्दारुक' का स्वरूप निम्न प्रकार है–

षट्दारुक की तृतीय स्थिति

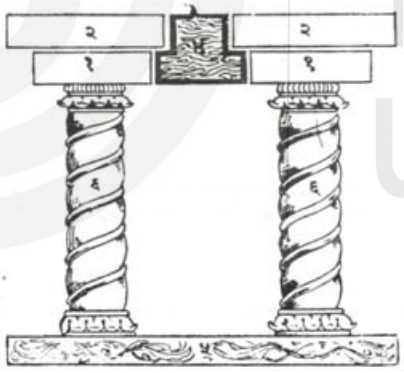

4.3.3 द्वार निर्माण

आचार्य भरत ने रंगशीर्ष के पृष्ठभाग में स्थित नेपथ्यगृह में दो द्वारों का सबसे पहले विधान किया है–

कार्यं द्वारद्वयं चात्र नेपथ्यगृहकस्य। (ना.शा. 2/76)

ये दोनों द्वार नेपथ्यगृह एवं रंगशीर्ष को विभाजित करने वाली भित्ति में बनाये जाते हैं। अतः रंगशीर्ष के पृष्ठभाग में नेपथ्यगृह की दीवाल में दो द्वार की कल्पना स्पष्ट है। ये दोनों द्वार अपरिहार्य हैं। परन्तु यदि रंगपीठ और रंगशीर्ष पृथक है और दोनों ही किसी यवनिका से नहीं अपितु भित्ति से विभाजित हो तो नेपथ्यगृह से प्रविष्ट पात्र तो रंगशीर्ष पर रहते हैं। उनके आने का द्वार रंगपीठ के पृष्ठभाग में होना चाहिए क्योंकि पात्र

रंगपीठ पर प्रवेश कर सके। आचार्य भरत ने पुनः एक स्थल पर द्वार का विधान किया है। यह भी नेपथ्यगृह के सम्बन्ध में ही है। रंगपीठ पर प्रवेश के लिए एक द्वार हो तथा जन–सामान्य के प्रवेश के लिए एक द्वार प्रेक्षकगृह में रंगपीठ के सम्मुख हो–

द्वारं चैकं भवेत्तत्र रंगपीठप्रवेशनम्।
जनप्रवेशनं चान्यदाभिमुख्येन कारयेत्।।
रंगस्याभिमुखं कार्यं द्वितीय द्वारमेव तु। (ना.शा. 2/102–103)

यहाँ 'द्वार' शब्द में एक वचन का प्रयोग किया गया है। त्र्यस्र नाट्यमण्डप में कोण–स्थान तथा रंगपीठ के पृष्ठभाग में द्वारों का विधान किया गया है। इसके अतरिक्त कुछ आचार्यों के मत में तीन द्वार की कल्पना की गयी है। अभिनवगुप्त चार द्वार को अभिष्ट मानते हैं। डी.आर. मकनद के द्वारा पांच द्वार की कल्पना की गयी है तथा कुछ अन्य छः द्वार भी मानते हैं। इस तरह आचार्य भरत के दो द्वार के रूप ने तीन से छः द्वार की कल्पना की गयी है। आचार्य भरत ने नाट्यमण्डप के लिए कुछ द्वारों का निषेध भी किया है। उनका मानना है कि सम्मुख द्वार होने से नाट्यमण्डप निर्वात और गम्भीर धीर शब्दवान नहीं हो पाता है। इसलिए पात्रों द्वारा उच्चरित पाठ्य की प्रतिध्वनि नहीं होती है। अतएव भरत ने द्वार विद्ध नाट्यमण्डप का निषेध किया है। द्वार के सम्बन्ध में विहित विधि–निषेध नाट्य प्रयोग की उपयुक्तता को दृष्टि में रखकर प्रस्तुत किये गये हैं। इन द्वारों के माध्यम से सामाजिक एवं पात्रों का प्रवेश तथा अपेक्षित प्रकाश की व्यवस्था होती थी, परन्तु द्वार की रचना शैली ऐसी होती थी कि पात्रों द्वारा उच्चरित वाक्य गंजित भी हो। द्वार के द्वारा प्रकाश व्यवस्था भी समुचित होती है।

4.3.4 कुतप

नाट्यमण्डप में कुतुप एक महत्त्वपूर्ण भाग है। वस्तुतः कुतप (वाद्यवृन्द और गायक–गायिकाएँ) नेपथ्यगृह तथा रंगशीर्ष के बीच की भित्ति में बने दोनों दरवाजों के बीच वेदी पर बैठाया जाता है। कुतप के सदस्यों का मुख चारों दिशाओं में रहता है, उन्हें अभिनेताओं का सामना करने की आवश्यकता नहीं होती है। कुतप रंगशीर्ष पर रहता है और रंगशीर्ष तथा रंगपीठ के बीच में जवनिका (पर्दा) रहती है। अतः कुतप प्रायः जवनिका से ढका रहता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने विस्तार से बताया है कि रंगशीर्ष पर बनी वेदी के ऊपर कुतप का कौन सा सदस्य कहाँ बैठेगा। तदनुसार सबसे पहले पूर्व की ओर मुख करके मार्दङ्गिक (मृदंग बजाने वाला) बैठता है, उसके पाणविक (पणववादक) बैठते है। रंगपीठ के दक्षिण की ओर गायक बैठता है, जिसका मुख उत्तर दिशा में रहता है। उत्तर की ओर गायिकाएं बैठती हैं, जिनका मुख दक्षिण में रहता है। इनके वाम भाग की ओर वैणिक (वीणा वादक) बैठता है और उनसे कुछ हट कर बाँसुरी वादक। इस दृष्टि नाट्यमण्डप कुतुप महत्त्वपूर्ण भाग के रूप में सामने आता है।

4.3.5 नाट्यमण्डपों पर छत

नाट्यमण्डप धूप और वर्षा से सुरक्षित रहे इस लिए उसके छत की आवश्यकता होती है। यद्यपि भरत ने नाट्यमण्डप के प्रधान अंगोपांगों के विवरण के प्रसंग में 'छत' के सम्बन्ध में मौन ही धारण किया है। ये भारतीय नाट्यगृह छतदार थे या प्राचीन ग्रीक नाट्य–गृहों की तरह ये ऊपर से खुले हुए थे ? आचार्य भरत ने छत का पृथक्

विधान तो नहीं किया है परन्तु भित्ति–रचना में वातायनों की न्यूनता, मंडप–धारण में स्तंभों की दृढ़ता, नाट्य–मंडप की धीर–शब्दता तथा शैलगुहा जैसे आकार के नाट्य–मंडप की परिकल्पना से नाट्य–मंडपों के छतदार होने का समर्थन होता है। यदि नाट्य–मंडप छतदार नहीं होते तो वातायन से प्रकाश आन की कल्पना क्यों की जाती। यदि स्तंभों के ऊपर मंडप नहीं होते तो उनके दृढ़ होने का क्या अर्थ होता है ? छत होने पर ही उच्चरित पाठ्य प्रतिध्वनित होता है। और यदि ऊपर छत न हो तो पर्वत की गुफा के समान उनका आकार ही कैसे होता? इन विप्रतिपत्तियों का निराकरण छत के द्वारा ही सम्भव है। अतएव भरत प्रतिपादित नाट्यमण्डप पर छतों की रचना का निश्चित रूप से विधान किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है।

4.3.6 'शेलगुहाकार' नाट्यमण्डप

पर्वत–गुफाओं में शब्द प्रतिध्वनित होते हैं, उसी के अनुरूप 'शैलगुहाकार' नाट्यमण्डप में उच्चरित पाठ्य प्रतिध्वनित होते हैं। राव महोदय के मत से 'शैलगुहाकार' और 'द्वि भूमि' शब्दों का प्रयोग भरत ने रंगपीठ के ऊपर की छत 'रंगशीर्ष' के लिए किया है। रंगशीर्ष की ऊपरी छत विषम–स्तर है, समस्तर नहीं होता है। यदि रंगशीर्ष समस्तर हो तो आवाज टकराकर रंगपीठ पर ही चली आएगी। इसीलिए भरत ने 'विषमस्तर रंगशीर्ष' की परिकल्पना की है, क्योंकि उच्चरित पाठ्य 'विषमस्तर, द्विभूमि, शैलगुहाकार', 'रंगशीर्ष' से प्रतिध्वनित हो प्रेक्षकोपवेशन की ओर प्रसारित हो। राव महोदय की यह कल्पना अत्यन्त समृद्ध एवं नाट्य–प्रयोग की श्राव्यता की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है एवं मूल्यवान् भी है।

4.3.7 रंगमण्डप की विभाजनपद्धति

प्राचीन रंगमंडप की विभाजनपद्धति का विश्लेषण करने पर यवनिका के प्रयोग की अनिवार्यता सिद्ध हो जाती है। रंगमंडप के आधे भाग में प्रेक्षकोपवेशन रहता है, शेष आधे भाग में रंगपीठ (मुख्य रंगभूमि) रंगशीर्ष भौर नेपथ्यगृहों की योजना होती है। रंगपीठ के अग्रभाग में यवनिका टंगी रहती है। अपनी साजसज्जा में प्रस्तुत पात्र यवनिका के हटते ही प्रेक्षकों के दृष्टिपथ में प्रवेश करते हैं। रंगपीठ के पृष्ठभाग में रंगशीर्ष होता है जहां अगले दृश्यों को प्रस्तुत करने वाले पात्र प्रतीक्षा करते हैं। वहाँ वाद्य आदि विभिन्न सामग्रियाँ रहती हैं। रंगपीठ और रंगशीर्ष या तो यवनिका द्वारा विभाजित होते हैं या स्थायी भित्ति रचना द्वारा उसे विभाजित किया जाता है। दोनों के मध्य भित्ति होने पर दो द्वारों की परिकल्पना की गई है जहाँ भी यवनिका टंगी रहती है। रंगशीर्ष के पृष्ठभाग में नेपथ्यगृह होता है जहाँ पात्रों की वेशभूषा, रूपसज्जा आदि की नेपथ्यज विधियों का प्रयोग होता है। यहाँ नेपथ्यगृह के सम्मुख यवनिका अनिवार्य रूप से रहती है।

4.3.8 नाट्यमण्डप के तीन भाग

नाट्यमण्डप पर ही आभ्यन्तर, बाह्य और माध्यम की परिकल्पना की जाती है। जो पात्र पहले से नाट्यमण्डप पर प्रवेश करते हैं, नाट्यमण्डप का वह भाग भी आभ्यन्तर होते हैं क्योंकि वे नाट्यमण्डप के अन्तःस्थान में हैं। परन्तु जो पात्र नाट्यमण्डप या रंगमंच पर पहले से नहीं होते, बाद में प्रवेश करते हैं, वे आभ्यन्तर नहीं, बाह्य होते हैं, और जिस मार्ग से वे पात्र रंगमंच पर प्रवेश करते हैं, रंगमंच का वह भाग माध्यम होता है। क्योंकि इसी माध्यम या प्रवेश–द्वार से रंगमंच के आभ्यन्तर भाग में पात्र प्रवेश करते

हैं। यह प्रवेश–द्वार नेपथ्य–गृह से सम्बन्धित होता है। रंगमंच के आभ्यन्तर भाग में स्थित पात्र से मिलने के लिए बाह्य भाग से यदि कोई पात्र आता है तो दक्षिणाभिमुख हो आत्मनिवेदन करता है। रंगमंच का विधान भरत ने जिस रूप में किया है उसके यह अनुरूप ही है। मुख्य भाग रंगपीठ है, यही आभ्यन्तर होता है, यहीं पर पात्र नाटय–प्रयोग करते हैं। शेष पश्चिम भाग में रंगशीर्ष और नेपथ्य होते हैं, रंगशीर्ष में ही वे विश्राम या प्रतीक्षा करते हैं, और इसी में स्थित नेपथ्यगृहाभिमुख दो द्वारों से पात्रों का आवागमन होता है।

4.4 सारांश

इस इकाई में रंगमंच के आन्तरिक विषयों का अध्ययन किया गया है जिसके अन्तर्गत मत्तवारणी, रंगपीठ, रंगशीर्ष षड्दारुक, कुतप, छत आदि विषयों का वर्णन किया गया है। यहाँ मत्तवारणी बताया गया है कि नाट्यमण्डप के बाहर दोनों ओर बने बरामदे मत्तवारणी होती है। रंगपीठ भी मत्तावरणी के समान दोनों ओर बनाई जाती है जो प्रेक्षकों के बैठने के काम में आती है। रंगपीठ से ऊँचा बना भाग रंगशीर्ष कहलाता है। नाट्यमण्डप में प्रयुक्त षड्दारुक का प्रयोग भी यहाँ बतलाया गया है वस्तुतः छह काष्ठ खण्ड लगाने की विधि को षड्दारुक कहा जाता है। नेपथ्य और रंगशीर्ष के मध्य का भाग कुतप होता है। धूप–बरसात आदि से बचने के लिए नाट्यमण्डप का छत तैयार किया जाता है। इस प्रकार हम देखते हैं कि इस इकाई के रूप में नाट्यमण्डप के सुव्यवस्थित स्वरूप का सहज अध्ययन हो सकेगा।

4.5 शब्दावली

मत्तवारणी – नाट्यमण्डप के दोनों ओर बनी अटारी। वरण्डा या सुसज्जित बर्हिभाग।

रंगपीठ – रंगशाला रंगपीठ कहलाती है।

कुतप – वाद्यवृन्द और गायकवृन्द के बैठने के स्थान को कुतप कहा जाता है।

रंग – रंगमंच, नाट्यशाला, नाट्यगृह, नाट्यमण्डप आदि अर्थ में प्रयुक्त होता है।

4.4 सन्दर्भ ग्रन्थ

1. नाट्यशास्त्र, सं. डॉ. पारसनाथ द्विवेदी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 2015
2. नाट्यशास्त्रविश्वकोश, राधावल्लभ त्रिपाठी, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 1999
3. भरत और भारतीय नाट्यकला, सुरेन्द्रनाथ दीक्षित, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 2009
4. श्रीविष्णुधर्मोत्तरमहापुराण, टीकाकार आचार्य शिवप्रसाद द्विवेदी, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन, वाराणसी, 2016
5. नाट्यशास्त्रीय मूलतत्त्वों की विकास परम्परा, सं. कुसुम भूरिया दत्ता, प्रतिभा प्रकाशन, दिल्ली, 2012
6. नाट्यानुशासन, रेवाप्रसाद द्विवेदी, कालिदाससंस्कृतसंस्थानम्, वाराणसी, 2008

7. अग्निपुराण का नाट्यदर्शन, डॉ. संजय कुमार, सत्यम् पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, 2018

8. नाट्यम् अंक 80, (नाट्यशास्त्र विशेषांक), नाट्यपरिषद् संस्कृत विभाग, डॉक्टर हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर, मार्च–2017

9. संस्कृत हिन्दी कोश, वामनशिवरामआप्टे, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2016

4.5 बोध प्रश्न

1. रंगमंच के आन्तरिक अभिधानों को स्पष्ट कीजिए।
2. मत्तवारणी की निर्माण विधि स्पष्ट कीजिए।
3. रंगपीठ से आप क्या समझते हैं?
4. षड्दारुक क्या है?
5. नाट्यमण्डप में द्वार की संख्या एवं उसके निर्माण विधि पर प्रकाश डालिए।

ignou
THE PEOPLE'S
UNIVERSITY